

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 11 अध्याय 9: अवधूत के अन्तिम गुरु

21 September 2026



परिव्राजक अवधूत अपने महान् उपदेश को पूर्णता तक ले जाते हैं, विविध प्राणियों तथा शिल्पियों से सात अन्तिम शिक्षाएँ ग्रहण करते हुए, तथा अन्तिम गुरु के रूप में स्वयं शरीर के विषय में बताते हुए, तत्पश्चात् दुर्लभ मानव जन्म के उपहार का सम्मान करके विदा लेते हैं।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में आपका स्वागत है, जो श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं तथा शिक्षाओं के माध्यम से एक भक्तिपूर्ण यात्रा है। पिछले अध्याय में, परिव्राजक अवधूत ने राजा यदु को अपने नौ गुरुओं के विषय में बताया, और पिंगला वेश्या की मार्मिक कथा से समापन किया, जिसने समस्त आशा त्यागकर शान्ति पाई। इस अध्याय में वे अपने उपदेश को उसके समापन तक ले जाते हैं, एक पक्षी के अपना भार त्यागने, एक निश्चिन्त बालक, एक एकान्तवासिनी कुमारी, एक तन्मय शिल्पी, एक सर्प, एक जाल बुनने वाले कीट तथा एक भृंगी से अन्तिम सात शिक्षाएँ ग्रहण करते हुए, और तत्पश्चात् सबसे महान् शिक्षा, जो उन्होंने अपने ही शरीर से ली: कि यह दुर्लभ मानव जन्म, इतना क्षणभंगुर होते हुए भी, मुक्ति का एकमात्र खुला द्वार है, जिसे व्यर्थ नहीं गँवाना चाहिए। यह सिखाकर कि सम्पूर्ण ज्ञान अनेक गुरुओं से एकत्र होता है, एक से नहीं, अवधूत विदा लेते हैं; और राजा यदु, समस्त आसक्ति से मुक्त, परम मानसिक शान्ति में रह जाते हैं। इस प्रकार चौबीस गुरुओं का वह सुन्दर उपदेश समाप्त होता है, जो भगवान् ने उद्धव को सुनाया।

अध्याय को जानकारो

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 11 (एकादश स्कन्ध)
- अध्याय: 9 (नवम प्रवचन)
- अध्याय शीर्षक: अवधूत के अन्तिम गुरु तथा दुर्लभ मानव जन्म
- प्रधान वक्ता: अवधूत ब्राह्मण (दत्तात्रेय), राजा यदु को उत्तर देते हुए; समस्त श्रीकृष्ण द्वारा उद्धव को, तथा सुकदेव गोस्वामी द्वारा राजा परीक्षित को कहा गया
- प्रधान श्रोता: राजा यदु; तथा, कथा के ढाँचे में, उद्धव तथा राजा परीक्षित
- मुख्य स्थान: राजा यदु तथा एक परिव्राजक अवधूत का प्राचीन मिलन, द्वारका में भगवान् की उद्धव को कही गई कथा के भीतर
- केन्द्रीय विषय: अवधूत ने अपने अन्तिम सात गुरुओं तथा अपने ही शरीर से जो सीखा, मानव जन्म का परम महत्त्व, तथा चौबीस गुरुओं के उपदेश का समापन
- प्रधान श्लोक-सीमा: स्कन्ध 11, अध्याय 9, श्लोक 1-33
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

पिछले अध्याय का सन्दर्भ

अध्याय 8 में, अवधूत ने राजा यदु को अपने नौ और गुरुओं — अजगर, समुद्र, पतंगा, भ्रमर, हाथी, मधु निकालने वाला, हरिण तथा मछली — के विषय में बताया, और पिंगला वेश्या के जागरण की कथा सुनाई, जिसने समस्त सांसारिक आशा काटकर भगवान् की शरण ली। यह अध्याय उसी उपदेश को उसके समापन तक आगे बढ़ाता है, जब अवधूत अपने शेष गुरुओं का नाम लेते हैं और मानव जीवन के अमूल्य अवसर पर चिन्तन करते हैं।

कुरर पक्षी — संग्रह का भार

ब्राह्मण ने इस भाग का आरम्भ एक ऐसे सिद्धान्त से किया जो आगे की समस्त शिक्षाओं में व्याप्त है: जो कुछ भी मनुष्य को सबसे प्रिय होता है, वही अन्ततः दुःख का स्रोत बन जाता है, और केवल वही जो संग्रह से मुक्त है, अनन्त सुख पाता है।

श्रीब्राह्मण उवाच

परिग्रहो हि दुःखाय यद् यत्प्रियतमं नृणाम् ।

अनन्तं सुखमाप्नोति तद् विद्वान् यस्त्वकिञ्चनः ॥ १ ॥

śrī-brāhmaṇa uvāca parigrāho hi duḥkhāya yad yat priyatamaṁ nṛṇām anantaṁ sukham āpnoti tad vidvān yas tv akiñcanaḥ

अर्थ: ब्राह्मण ने कहा: जो कुछ मनुष्य को सबसे प्रिय होता है, वही शोक का कारण बन जाता है, क्योंकि संग्रह स्वयं ही दुःख लाता है; किन्तु जो बुद्धिमान् कुछ भी संग्रह नहीं करता, वह अनन्त सुख पाता है। (स्कन्ध 11, अध्याय 9, श्लोक 1)

उन्होंने यह सत्य एक कुरर पक्षी में देखा। उस पक्षी ने मांस का एक टुकड़ा पकड़ा, और तुरन्त ही अन्य, बलवान् कुरर, जिनके पास कुछ नहीं था, उस पर टूट पड़े। जब उसने वह मांस गिरा दिया, तभी वह व्याकुल पक्षी शान्ति पा सका।

सामिषं कुररं जघ्नुर्बलिनेऽन्ये निरामिषाः ।

तदामिषं परित्यज्य स सुखं समविन्दत ॥ २ ॥

sāmiṣaṁ kuraraṁ jaghnur balino 'nye nirāmiṣāḥ tadāmiṣaṁ parityajya sa sukhaṁ samavindata

अर्थ: बलवान् कुरर, जिनके पास मांस न था, उस कुरर पर आक्रमण करने लगे जो मांस लिए था; किन्तु जब उसने वह मांस गिरा दिया, तब वह पक्षी शान्ति तथा सुख पा सका। (स्कन्ध 11, अध्याय 9, श्लोक 2)



कुरर पक्षी से अवधूत ने संग्रह का भार सीखा — कि केवल तभी जब उस पक्षी ने वह मांस छोड़ा जिसे वह पकड़े था और जिसके लिए अन्य लड़ रहे थे, तब उसे शान्ति मिली (श्लोक 2)।

बालक — आत्मा में निश्चिन्त

एक निर्दोष बालक से अवधूत ने मान-अपमान से अछूता तथा घर एवं परिवार की चिन्ता से मुक्त रहना सीखा। एक निश्चिन्त बालक की भाँति, वे आत्मा में क्रीड़ा करते तथा उसी के प्रति समर्पित होकर संसार में विचरते रहे। दो प्रकार के जन, उन्होंने देखा, चिन्ता से मुक्त तथा परम आनन्द में निमग्न रहते हैं: वह निष्कपट बालक जो कुछ नहीं जानता, तथा वह मुनि जिसने तीनों गुणों को पार कर परमेश्वर को जान लिया है।

कुमारी — एकान्त की बुद्धिमत्ता

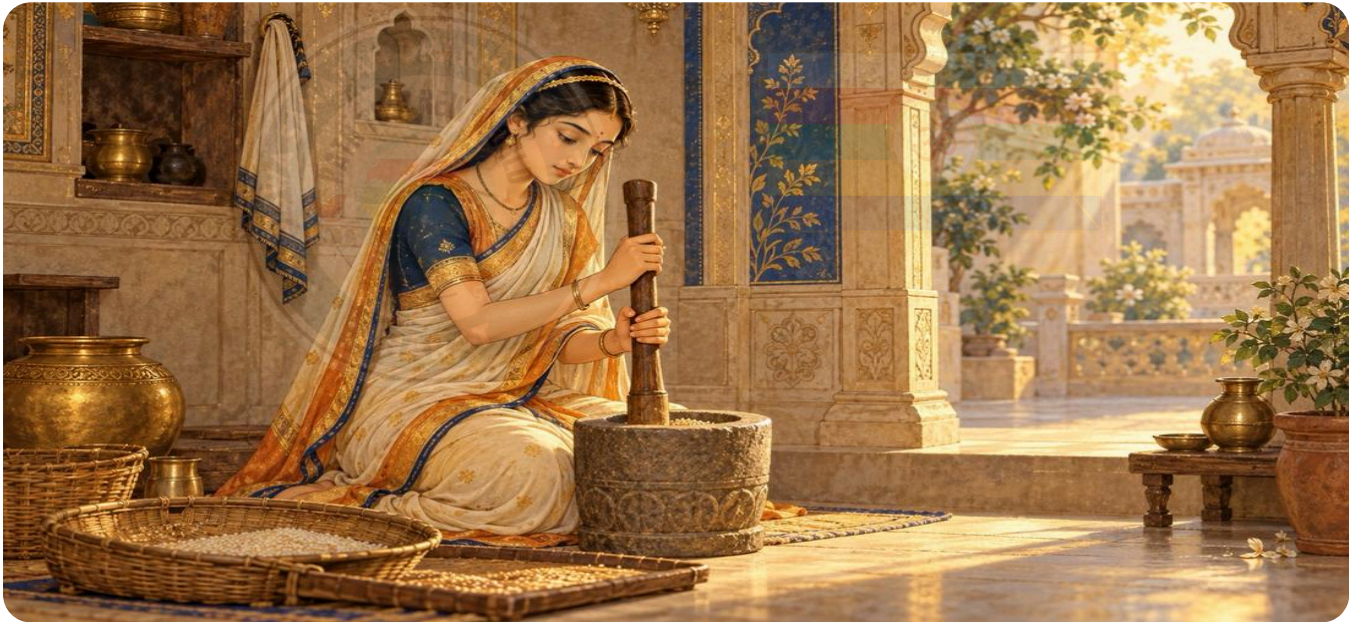
एक कुमारी से अवधूत ने एकान्त का महत्त्व सीखा। जब उसके परिजन अन्यत्र गए हुए थे, तब वर चुनने आए अतिथियों के लिए उसे स्वयं ही भोजन तैयार करना पड़ा। जब वह धान कूट रही थी, उसकी कलाइयों की अनेक शंख की चूड़ियाँ ज़ोर से खनकीं। लज्जित होकर कि उसके अतिथि यह सुनकर उसकी दरिद्रता जान लेंगे, उसने एक-एक कर चूड़ियाँ तोड़ीं जब तक प्रत्येक कलाई पर केवल दो रह गईं; किन्तु दो भी टकराईं, अतः उसने एक और तोड़ी, प्रत्येक कलाई पर केवल एक चूड़ी छोड़कर, जिसने कोई ध्वनि नहीं की। इससे अवधूत ने अपनी शिक्षा ली।

वासे बहूनां कलहो भवेद् वार्ता द्वयोरपि ।

एक एव वसेत्तस्मात् कुमार्या इव कङ्कणः ॥ १० ॥

vāse bahūnām kalaho bhaved vārtā dvayor api eka eva vaset tasmāt kumāryā iva kaṅkaṇaḥ

अर्थ: जहाँ अनेक साथ रहते हैं वहाँ कलह होता है, और दो के बीच भी व्यर्थ की बातें होती हैं; अतः मनुष्य को अकेले रहना चाहिए, कुमारी की कलाई की एकमात्र चूड़ी की भाँति। (स्कन्ध 11, अध्याय 9, श्लोक 10)



कुमारी से अवधूत ने एकान्त की बुद्धिमत्ता सीखी — जैसे उसने अपनी खनकती चूड़ियाँ तोड़ीं जब तक एक मौन चूड़ी न रह गई, वैसे ही साधक अकेला विचरता है, संग की ध्वनि से मुक्त (श्लोक 10)।

बाण बनाने वाला — एकाग्रता की शक्ति

एक बाण बनाने वाले से अवधूत ने एकाग्रता सीखी। मनुष्य को मन को प्राण सहित रोककर, दृढ़ आसन धारण कर, तथा वैराग्य एवं निरन्तर सजगता का अभ्यास करके, मन को स्थिर करना चाहिए, जब तक वह एक परम में लीन न हो जाए और चंचल एवं तामसिक वेग शान्त न हो जाएँ। बाण बनाने वाला अपने कार्य में इतना लीन था कि जब वह बाण गढ़ रहा था, तब उसके निकट से एक राजा के गुज़रने को भी उसने नहीं देखा।

तदैवमात्मन्यवरुद्धचित्तो
न वेद किञ्चिद् बहिरन्तरं वा ।
यथेषुकारो नृपतिं व्रजन्त-
मिषौ गतात्मा न ददर्श पार्श्वे ॥ १३ ॥

*tadaivam ātmany avaruddha-citto na veda kiñcid bahir antaram vā yatheṣu-kāro nṛpatim
vrajantam iṣau gatātmā na dadarśa pārśve*

अर्थ: जैसे बाण बनाने वाला, अपने बाण में मन पूर्णतः लीन कर, अपने निकट से राजा के गुज़रने को भी नहीं देख सका, वैसे ही जिसका मन भीतर आत्मा में स्थिर है, वह बाहर या भीतर कुछ नहीं जानता। (स्कन्ध 11, अध्याय 9, श्लोक 13)



बाण बनाने वाले से अवधूत ने एकाग्र चित्तता सीखी — वह कारीगर अपने कार्य में इतना लीन था कि उसने अपने निकट से राजा के गुज़रने को भी नहीं देखा (श्लोक 13)।

सर्प — स्थिर निवास से मुक्ति

सर्प से अवधूत ने सीखा कि साधक को बिना किसी स्थिर निवास के अकेले विचरना चाहिए, सदा सजग रहते हुए, गुफा में निवास करते हुए, वाणी में मितव्ययी तथा पहचान के प्रकट चिह्नों से मुक्त। जिसका शरीर ही नश्वर है, उस मनुष्य के लिए घर बनाने में परिश्रम करना व्यर्थ दुःख का स्रोत है; इससे उत्तम है सर्प की भाँति होना, जो दूसरों के खोदे बिल में सन्तोष से निवास करता है।

मकड़ी — भगवान् जो लोकों को बुनते हैं

मकड़ी से अवधूत ने सबसे गहरी शिक्षा सीखी — कि परम भगवान् अपनी ही शक्ति से समस्त ब्रह्माण्ड को कैसे प्रकट, धारण तथा विलीन करते हैं। एक कल्प के अन्त में वह एकमात्र सर्वशक्तिमान् भगवान्, स्वयंभू तथा सबके आधार, अपनी काल-शक्ति से सृजित लोकों को विलीन कर देते हैं, और अकेले, अभेद रह जाते हैं। तत्पश्चात्, अपनी ही अकेली शक्ति से, वे तीन गुणों की अपनी माया को क्षुब्ध करते हैं और सूत्र अर्थात्

महत्तत्त्व को प्रकट करते हैं, जिसके द्वारा समस्त विविध सृष्टि बुनी जाती है और जीव संसार में प्रवेश करता है। जैसे मकड़ी अपने ही हृदय से जाला बुनती है, उसमें क्रीड़ा करती है, और फिर उसे अपने में समेट लेती है, वैसे ही परम भगवान् समस्त लोकों को प्रकट, पालित तथा पुनः विलीन करते हैं।

यथोर्णनाभिर्हृदयादूर्णा सन्तत्य वक्त्रतः ।

तया विहृत्य भूयस्तां ग्रसत्येवं महेश्वरः ॥ २१ ॥

yathorṇanābhir hṛdayād ūrṇām santatya vaktrataḥ tayā vihṛtya bhūyas tāṁ grasaty evaṁ maheśvaraḥ

अर्थ: जैसे मकड़ी अपने ही हृदय से मुख द्वारा तन्तु निकालती है, उससे क्रीड़ा करती है, और फिर उसे पुनः निगल लेती है, वैसे ही परम भगवान् ब्रह्माण्ड का सृजन, पालन तथा संहार करते हैं। (स्कन्ध 11, अध्याय 9, श्लोक 21)



मकड़ी से अवधूत ने सृष्टि का महान् सत्य सीखा — जैसे मकड़ी अपने से जाला बुनती है और उसे अपने भीतर समेट लेती है, वैसे ही परम भगवान् समस्त लोकों को प्रकट, पालित तथा विलीन करते हैं (श्लोक 21)।

भृंगी — हम वही बन जाते हैं जिसका हम ध्यान करते हैं

भृंगी से अवधूत ने सीखा कि जीव उसी रूप को प्राप्त कर लेता है जिस पर वह अपना मन एकाग्र करता है, चाहे वह प्रेम से हो, द्वेष से या भय से। उन्होंने देखा कि एक भृंगी ने एक छोटे कीड़े को अपने घोंसले में बन्द किया; और वह बन्दी कीड़ा, भृंगी के निरन्तर, भयपूर्ण ध्यान में रहकर, अन्ततः अपने पूर्व शरीर को त्यागे बिना ही स्वयं भृंगी में परिवर्तित हो गया।

कीटः पेशस्कृतं ध्यायन् कुड्यां तेन प्रवेशितः ।

याति तत्सात्मतां राजन् पूर्वरूपमसन्त्यजन् ॥ २३ ॥

kīṭaḥ peśaskṛtaṁ dhyāyan kuḍyāṁ tena praveśitaḥ yāti tat-sātmataṁ rājan pūrva-rūpam asantya jan

अर्थ: भृंगी द्वारा अपने घोंसले में बन्द किया गया कीड़ा, भय से भृंगी का ध्यान करते हुए, हे राजन्, उसी की प्रकृति को प्राप्त होकर उसमें परिवर्तित हो जाता है, अपने पूर्व शरीर को त्यागे बिना ही। (स्कन्ध 11, अध्याय 9, श्लोक 23)

शरीर — अन्तिम गुरु, तथा दुर्लभ मानव जन्म

इन गुरुओं का नाम लेकर, अवधूत एक अन्तिम गुरु की ओर मुड़े — अपने ही शरीर की। यह शरीर, जन्म एवं मृत्यु के अधीन तथा सदा क्लेशों का स्रोत, स्वयं एक गुरु है, क्योंकि यह वैराग्य तथा विवेक जगाता है; यद्यपि यह कुछ समय के लिए सत्य के चिन्तन में सहायक होता है, वह वास्तव में दूसरों का है, जो एक दिन उसे खा जाएँगे, और इसलिए बुद्धिमान्, यह देखकर, समस्त आसक्ति से मुक्त होकर विचरते हैं। मनुष्य भोगों के लिए तथा परिवार एवं सम्पत्ति के निरन्तर बढ़ते वृत्त को बनाए रखने के लिए धन कमाने में परिश्रम करता है, और अन्ततः एक वृक्ष की भाँति मरता है जो किसी और के उगने के लिए बीज छोड़ जाता है — उसकी इच्छाएँ एक और जन्म का बीज बोती हैं। उसकी इन्द्रियाँ उसे इधर-उधर खींचती हैं, प्रत्येक अपनी दिशा में, झगड़ती सौतों की भाँति।

तथापि भगवान् ने जो समस्त शरीर रचे — वृक्षों, सरीसृपों, पशुओं, पक्षियों तथा मछलियों के — उनसे वे तभी सन्तुष्ट हुए जब उन्होंने बुद्धि से सम्पन्न तथा उन्हें जानने में समर्थ मानव रूप गढ़ा। यह दुर्लभ मानव जन्म, अनगिनत जन्मों के पश्चात् प्राप्त तथा भंगुर होते हुए भी, जीवन के परम लक्ष्य को पाने का साधन है; अतः बुद्धिमान् को शरीर के गिरने से पूर्व शीघ्रता से मुक्ति के लिए प्रयत्न करना चाहिए, क्योंकि इन्द्रिय-भोग तो किसी भी योनि में मिल सकता है, किन्तु आत्म-साक्षात्कार केवल यहीं।

लब्ध्वा सुदुर्लभमिदं बहुसम्भवान्ते
मानुष्यमर्थदमनित्यमपीह धीरः ।
तूर्णं यतेत न पतेदनुमृत्यु याव-
न्निःश्रेयसाय विषयः खलु सर्वतः स्यात् ॥ २९ ॥

labdhvā su-durlabham idaṁ bahu-sambhavānte mānuṣyam artha-dam anityam apīha dhīraḥ tūrṇaṁ yateta na pated anu-mṛtyu yāvan niḥśreyasāya viśayaḥ khalu sarvataḥ syāt

अर्थ: अनेक जन्मों के पश्चात् यह दुर्लभ मानव रूप — जीवन के परम लक्ष्य का दाता, यद्यपि नश्वर — पाकर, बुद्धिमान् को शरीर के गिरने से पूर्व शीघ्र मुक्ति के लिए प्रयत्न करना चाहिए; क्योंकि इन्द्रिय-भोग प्रत्येक योनि में मिल सकता है, किन्तु परम कल्याण केवल यहीं। (स्कन्ध 11, अध्याय 9, श्लोक 29)

इस प्रकार आसक्ति तथा अहंकार से मुक्त, वैराग्य से पूर्ण तथा अपने समस्त गुरुओं से एकत्र ज्ञान के प्रकाश से सम्पन्न होकर, अवधूत ने कहा कि वे आत्मा में स्थित होकर संसार में विचरते हैं। और उन्होंने उसी कारण से समापन किया जिससे उन्होंने इतने गुरुओं की खोज की थी: कि दृढ़ तथा सम्पूर्ण ज्ञान एक ही गुरु से नहीं मिल सकता, क्योंकि वह एक अद्वितीय परम सत्य ऋषियों द्वारा अनेक प्रकार से गाया गया है।

न ह्येकस्माद् गुरोर्ज्ञानं सुस्थिरं स्यात् सुपुष्कलम् ।
ब्रह्मैतदद्वितीयं वै गीयते बहुधर्षिभिः ॥ ३१ ॥

na hy ekasmād guror jñānaṁ su-sthiraṁ syāt su-puṣkalam brahmaitad advitīyaṁ vai gīyate bahudharṣibhiḥ

अर्थ: दृढ़ तथा सम्पूर्ण ज्ञान एक ही गुरु से नहीं पाया जा सकता; क्योंकि यह ब्रह्म, एक अद्वितीय, ऋषियों द्वारा अनेक प्रकार से गाया गया है।
(स्कन्ध 11, अध्याय 9, श्लोक 31)

अवधूत के उपदेश का समापन

राजा यदु से इस प्रकार कहकर, गहन ज्ञान के उस ब्राह्मण को राजा ने सम्मानित तथा पूजित किया, और वे विदा लेकर प्रसन्नतापूर्वक अपने मार्ग चले गए। और राजा यदु — यदुओं के दूरस्थ पूर्वज — अवधूत के, जो भगवान् दत्तात्रेय समझे जाते हैं, उपदेश को सुनकर, समस्त आसक्ति से मुक्त हुए और एक सम, शान्त मन को प्राप्त हुए।

अवधूतवचः श्रुत्वा पूर्वेषां नः स पूर्वजः ।
सर्वसङ्गविनिर्मुक्तः समचित्तो बभूव ह ॥ ३३ ॥

avadhūta-vacaḥ śrutvā pūrveṣāṁ naḥ sa pūrva-jāḥ sarva-saṅga-vinirmuktaḥ sama-citto babhūva ha

अर्थ: अवधूत के वचन सुनकर, हमारा वह पूर्वज समस्त आसक्ति से मुक्त हुआ और सम-चित्त तथा शान्त हो गया। (स्कन्ध 11, अध्याय 9, श्लोक 33)



राजा यदु परिव्राजक अवधूत को — जो भगवान् दत्तात्रेय समझे जाते हैं — विदा लेते समय श्रद्धापूर्वक सम्मानित करते हैं, और राजा समस्त आसक्ति से मुक्त तथा मन में शान्त रह जाते हैं (श्लोक 33)।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. संग्रह ही शोक का बीज है। जैसे कुरुर पक्षी को तभी शान्ति मिली जब उसने अपना आहार गिरा दिया, वैसे ही जो आत्मा कुछ संग्रह नहीं करती, वह अनन्त सुख पाती है (श्लोक 1-2)।
2. बालक की भाँति निश्चिन्त रहें, और एकान्त में निवास करें। मान तथा परिवार की चिन्ता से मुक्ति, और अनावश्यक संग से दूर एक शान्त जीवन, साधक के हृदय को शान्त रखते हैं (श्लोक 3-10)।
3. एकाग्रता साधना का हृदय है। जैसे बाण बनाने वाले ने राजा के गुज़रने को नहीं देखा, वैसे ही जिसका मन आत्मा में लीन है, वह भीतर या बाहर के संसार से अविचलित रहता है (श्लोक 11-13)।
4. भगवान् अपनी ही शक्ति से लोकों को बुनते तथा समेटते हैं। जैसे मकड़ी अपने से जाला बुनती है और उसे समेट लेती है, वैसे ही परम भगवान् समस्त ब्रह्माण्ड का सृजन, पालन तथा संहार करते हैं (श्लोक 16-21)।
5. ध्यान ही रूपान्तरण का साधन है। जैसे बन्दी कीड़ा निरन्तर भृंगी का चिन्तन करते-करते स्वयं भृंगी के स्वभाव को प्राप्त कर लेता है, वैसे ही साधक का चित्त जिस पर स्थिर होता है उसी के अनुरूप ढल जाता है — अतः चित्त को भगवान् में स्थिर करना चाहिए (श्लोक 22-23)।
6. मानव जन्म मुक्ति का दुर्लभ तथा खुला द्वार है। अनगिनत जन्मों के पश्चात् प्राप्त, यह भंगुर शरीर परमेश्वर को जानने का एकमात्र साधन है; बुद्धिमान् इसके लिए शीघ्र प्रयत्न करते हैं, क्योंकि ज्ञान अनेक गुरुओं से एकत्र होता है और जीवन अल्प है (श्लोक 24-31)।

एक भाक्तेपूर्ण चिन्तन

यह अध्याय चौबीस गुरुओं के समस्त उपदेश को समेटकर उसे एक ही तीव्र बिन्दु में केन्द्रित करता है: इस मानव जीवन की अमूल्यता। अवधूत ने हमें दिखाया है कि ज्ञान सर्वत्र है, एक पक्षी में प्रतीक्षारत जो अपना आहार गिरा देता है, एक कन्या की मौन चूड़ी में, एक कारीगर में जो अपने कार्य में खोया है, एक मकड़ी में अपने जाले पर। किन्तु अन्तिम तथा महानतम गुरु वह शरीर है जिसे हम धारण करते हैं — इसलिए नहीं कि उसकी पूजा हो, अपितु इसलिए कि वह समस्त सृष्टि में वह एकमात्र पात्र है जिसके द्वारा आत्मा मुड़कर अपने भगवान् को जान सकती है। उनके शब्दों में एक कोमल तीव्रता है। इन्द्रिय-सुख, वे स्मरण कराते हैं, कीट से देवता तक प्रत्येक प्राणी को उपलब्ध है; केवल मनुष्य ही परम कल्याण की खोज कर सकता है, और वह भी केवल क्षण भर के लिए। यह चिन्ता का नहीं, अपितु उत्साह का आह्वान है — इस दुर्लभ तथा क्षणिक उपहार का भली-भाँति उपयोग करने का, जीवन जो कुछ हमारे समक्ष रखता है उससे विनम्रतापूर्वक ज्ञान एकत्र करने का, और मन को, बन्दी कीड़े की भाँति भृंगी पर, पूर्णतः भगवान् पर टिकाने का, जब तक हम उनकी ही प्रकृति को प्राप्त न कर लें। और यह सुन्दर रूप से उचित है कि उपदेश अवधूत की विजय में नहीं, अपितु राजा यदु की शान्ति में समाप्त होता है: एक आत्मा, सच्चे मन से सुनकर, मुक्त हुई।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज, कुछ शान्त क्षणों के लिए अवधूत की अन्तिम शिक्षा पर चिन्तन कीजिए — कि यह मानव जीवन एक दुर्लभ तथा खुला द्वार है। स्मरण कीजिए कि आज आप उस उपहार का सम्मान किस एक प्रकार से कर सकते हैं: प्रार्थना का एक क्षण, दया का एक कार्य, किसी क्षणिक लालसा से मन को हटाकर भगवान् की ओर मोड़ना। जैसे कीड़ा वही बन गया जिसका उसने ध्यान किया, वैसे ही उनके पवित्र नाम के जप से अपने मन को धीरे से उनसे भर दीजिए: “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।” इस छोटे, सच्चे मोड़ में आप इस अध्याय के मर्म का ही अभ्यास करते हैं — मानव जन्म के अमूल्य उपहार का उपयोग करके, क्षण-क्षण, परमेश्वर के निकट आने का।

उपसंहार

एकादश स्कन्ध का नवम प्रवचन चौबीस गुरुओं के उपदेश को उसके समापन तक ले आता है। परिव्राजक अवधूत राजा यदु को अपने अन्तिम सात गुरुओं के विषय में बताते हैं: कुरर पक्षी, जिसने सिखाया कि संग्रह शोक उत्पन्न करता है; निश्चिन्त बालक तथा एकान्तवासिनी कुमारी; बाण बनाने वाला, जिसने गहरी एकाग्रता सिखाई; सर्प, जो बिना घर के सन्तुष्ट है; मकड़ी, जिसने प्रकट किया कि भगवान् लोकों को कैसे बुनते तथा समेटते हैं; और भृंगी, जिसने दिखाया कि हम वही बन जाते हैं जिसका हम ध्यान करते हैं। सबके अन्त में वे अपने ही शरीर को गुरु के रूप में सम्मानित करते हैं, और उसके साथ मानव जन्म के दुर्लभ तथा क्षणिक उपहार को — मुक्ति का एकमात्र खुला द्वार, जिसे नहीं गँवाना चाहिए। यह सिखाकर कि ज्ञान अनेक गुरुओं से एकत्र होता है, अवधूत, जो भगवान् दत्तात्रेय समझे जाते हैं, विदा लेते हैं, और राजा यदु समस्त आसक्ति से मुक्त तथा शान्त रह जाते हैं। इस प्रकार उद्धव-गीता का यह ज्योतिर्मय भाग समाप्त होता है, जिसे भगवान् ने उद्धव को उस वैराग्य के दर्पण के रूप में सुनाया, जिसे अपनाने का वे उन्हें आह्वान कर रहे थे।

श्रीमद्भागवतम् की दिव्य वाणी हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जगाए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

सन्दर्भ तथा आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, सम्पूर्ण), एकादश स्कन्ध, नवम प्रवचन, पृष्ठ 554-557।
- श्रृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज्ञान • बिस्वा सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन तथा अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण में दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश रूप में हैं। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद या टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक से किसी सम्बन्ध या समर्थन का दावा नहीं किया गया है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-skandh-11-adhyay-9-avdhoot-antim-guru-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञान • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

